# सङ्गीत-सम्मेलन पत्रिका

[संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः]

डॉ० प्रेमसागर जैन

एम० ए०, पी-एच० डी०

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग,

दि० जैन कॉलिज, बड़ौत

प्रकाशक :

श्रमण-जैन भजन प्रचारक संघ

देहली — मेरठ

महावीर जयन्ती
३१ मार्च १६६६

प्रति २०००

*प्राप्ति स्थान :*

मेरठ — **श्रमण-जैन भजन प्रचारक संघ**
६६–तीरगरान स्ट्रीट,
मेरठ शहर।

देहली — **श्रमण-जैन भजन प्रचारक संघ**
१८–दरिया गंज,
दिल्ली–६।

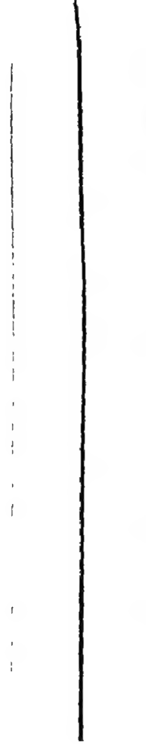
मुद्रक :
**प्रभात प्रेस, मेरठ।**



महावीर जयन्ती के पुण्य पर्व पर आयोजित

सांस्कृतिक सन्धया

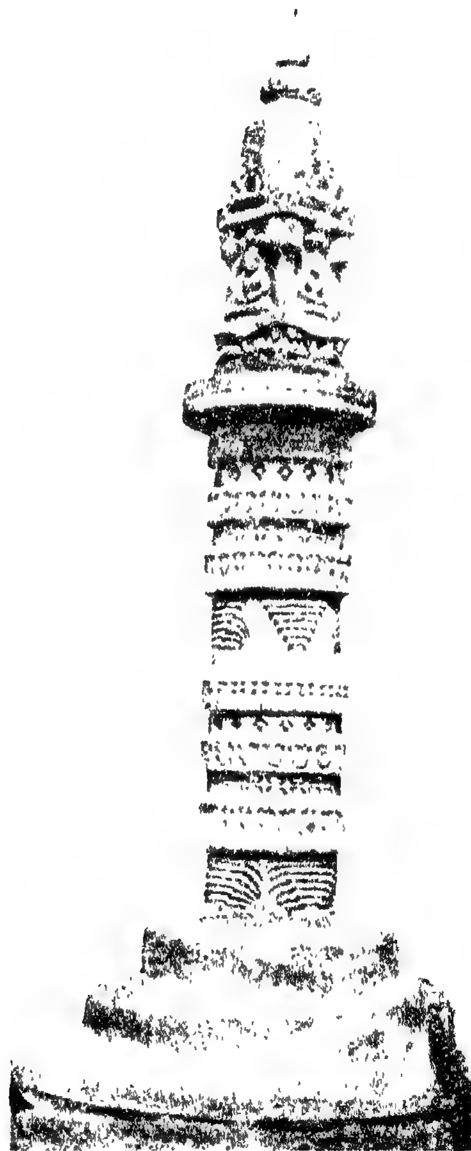
पर शुभ कामनाएं



"मानस्तम्भाः सरांसि प्रविमलजलसत्खातिका पुष्पवाटी ।
प्राकारो नाटयशालाद्वितयमुपवनं[1] वेदिकान्तर्ध्वजाद्याः ॥
शालः कल्पद्रुमाणां सुपरिवृत्तवनं स्तूपहर्म्यावली च ।
प्राकारः स्फाटिकोन्तर्नृ-सुर-मुनि-सभा पीठिकाग्रे स्वयम्भूः ॥"

दशभक्ति ॥१॥

समवशरण में अनेक मानस्तम्भ, निर्मलजलपूर्ण तालाब, परिखा, पुष्पोद्यान, प्राकार (चहार दीवार), नाटयशाला, उपवन, वेदिकाएँ और उन पर अन्तर्ध्वजा (झण्डियाँ), कल्पद्रुम से परिपूर्ण वन, स्तूप, हर्म्यपंक्ति, स्फटिक प्राकार और उसके मध्यभाग में नर-सुर-मुनि सभाएँ और उनके अग्रभाग में स्वयम्भू (भगवान्) विराजमान होते हैं।



---

१. नाट्यशालाद्वयेनाद्धि संवर्धितजनोत्सवः ॥
आदिपुराण, २५/२४२, पृष्ठ ६३१

# आद्य मिताक्षर

विगत वर्षों में जहां एक ओर आकाशवाणी के केन्द्रों से सभी धर्मों के भक्ति पदों का प्रसारण होता था वहां जैन भक्ति पदों के प्रसारण का अभाव बहुत खटकता था। अनेक बार इस विषय पर आकाशवाणी के अधिकारियों से बातचीत की गयी परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। एक बार आकाशवाणी दिल्ली के संगीत विभाग के निर्देशक आचार्य डा० बृहस्पति जी से श्रमण परम्परा के महान प्रतीक परम पूज्य श्री १०८ मुनि विद्यानन्द जी महाराज के समक्ष बातचीत के मध्य आकाशवाणी से जैन भक्ति पदों के नियमित प्रसारण का प्रसंग उठा। आचार्य जी ने कहा—जैन भक्ति पदों के ग्रामोफोन रेकार्डस का अभाव जैन पदों के नियमित प्रसारण में बाधक है। आप हमें जैन भक्ति पदों के ग्रामोफोन रेकार्डस या केवल भक्ति पद ही दीजिये। हम उनका प्रसारण अवश्य करायेंगे।

इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ की स्थापना की गई। संघ ने अब तक द्यानतराय और भूधरदास जी आदि प्राचीन कवियों के कुछ भजनों के ग्रामोफोन रेकार्ड तैयार करा लिये हैं एवं भगवान महावीर से सम्बन्धित कुछ भजनों के रेकार्ड तैयारी में है। इन भजनों के रेकार्डस को जिन्होंने सुना वे ही मुग्ध रह गये। इस पुनीत कार्य में संघ को समाज के प्रत्येक वर्ग का सहयोग मिला जिसके लिये संघ उनका आभारी है। इसके अतिरिक्त संघ के कार्यों में अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के महामन्त्री श्री सुकुमार चन्द जैन, श्री महावीर जी तीर्थ क्षेत्र कमेटी के मन्त्री श्री ज्ञानचन्द जैन खिन्दुका, साहू रमेश चन्द जैन दिल्ली व श्री नरेश चन्द जैन बड़ौत आदि कई महानुभावों का सहयोग विशेष रूप से प्राप्त हुआ है, जिसके लिये संघ उनका कृतज्ञ है।

संघ का उद्देश्य भगवान् महावीर के २५००वें परिनिर्वाण महोत्सव तक कम से कम ८० भजनों के ग्रामोफोन रेकार्ड्स तैयार कराने का है। यह बड़े हर्ष की बात है कि गत वर्ष से आकाशवाणी के दिल्ली केन्द्र से प्रत्येक बृहस्पतिवार को प्रातः ६-०५ पर वन्दना कार्य-क्रम में जैन भक्ति-पदों का नियमित प्रसारण होने लगा है। इस कार्य में आचार्य बृहस्पति जी, श्री भाई सतीश जैन, श्रीमती विद्यावती गर्ग एवं जैन युवक संगम (पंजीकृत) देहली का सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

डॉ० प्रेमसागर जी ने संगीत सम्मेलन पत्रिका का जो सम्पादन किया है उसके लिये संघ उनका आभारी है। हमें आशा है कि संगीत प्रेमी सज्जन इस पत्रिका से लाभान्वित होंगे। हमारा विचार संगीत समयसार पर हो रहे शोध कार्य को भी शीघ्र ही प्रकाशित कराने का है। प्रभात प्रेस, मेरठ के पार्टनर धर्मानुरागी श्री कृष्ण अवतार रस्तोगी जी ने इस पत्रिका का अत्यन्त अल्प समय में सुरुचिपूर्वक प्रकाशन करके जो सहयोग दिया है उसके लिये संघ उनका आभारी है।

—श्रीपाल जैन
मन्त्री

दिनांक २९ मार्च, १९६९ ]

# संगीत की शुद्ध पद्धति

"प्रबन्धा यत्र गीयन्ते, वाद्यन्ते च यथाक्षरम् ।
यथाक्षरं च नृत्यन्ते, सा चित्रा शुद्धपद्धतिः ॥"

- आचार्य पार्श्वदेव, सङ्गीतसमयसार, ७/२३०

जहाँ प्रबन्ध (काव्यों) का गायन किया जाता हो, उनके अक्षरों के अनुसार वाद्य बजाये जाते हों और उन अक्षरों के अनुसार ही नृत्य होता हो, वह चित्रापद्धति कही जाती है और वही पद्धति शुद्ध है ।

# सम्पादकीय

क्रियाविशालं नवकोटिपद्यैर्युक्तं सुसंगीतकलाविशिष्टं ।
छंदोगणाद्याननुभावयन्तमध्यापकानत्र विधौ यजामि ॥

आचार्य जयसेन, प्रतिष्ठापाठ ६२६, पृ० १६६

जैन संस्कृति और वाङमय में संगीत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन परम्परा उसे अनादिनिधन मानती है। वैसे, भोगभूमि की समाप्ति और कर्मभूमि के प्रारम्भ में अयोध्या के सम्राट ऋषभदेव ने सर्वप्रथम अपने पुत्र वृषभसेन को संगीत की शिक्षा दी थी। उन्होंने अपने पुत्र और पुत्रियों को असि, मषि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प में निष्णात बनाया था, ऐसा जैन साहित्य और पुरातत्त्व से सिद्ध है। ऋषभदेव ने नये युग की नई समस्याओं के रचनात्मक समाधान दिये थे। उन्हें वैदिक परम्परा भगवान्, अवतार, आदिप्रजापति और श्रमणधारा प्रथम तीर्थंकर मानती है। वे प्रागैतिहासिक थे। जहाँ तक पुरातत्त्व का सम्बन्ध है, मोहन-जो-दरो के उत्खनन में उनकी खड्गासन मूर्तियाँ, उनके प्राचीनतम अस्तित्त्व की साक्षी हैं। अर्थात् हम आज से ३००० वर्ष पूर्व, संगीत विद्या का आरम्भ मान ही सकते है।

जैन संस्कृति के प्रतिष्ठान चैत्य और मन्दिर, संगीत के मूलाधार थे। वहाँ संगीत के कल-कल प्रवाह में भक्ति-प्रस्विनी बहा करती थी। स्तुति-स्तोत्र, पूजा-अर्चा, प्रतिष्ठा-कल्याणक, रथोत्सव या दश लाक्षणी कोई भी महोत्सव हो, संगीत का आयोजन अनिवार्य रूप से होता था। जैनरास, नृत्य और संगीत के बिना चलते ही न थे। यह परम्परा आज भी अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है। जैनपुराण साहित्य से स्पष्ट है कि तीर्थङ्कर के गर्भ और जन्मोत्सव, इन्द्र और देवियों के नृत्य, वादित्र और गायन से ही सम्पन्न होते थे। भगवज्जिनसेनाचार्य (९वीं शती) के महापुराण (संस्कृत) और भूधरदास (१७वीं शती) के पार्श्वपुराण (हिन्दी) में इनका अच्छा चित्रांकन हुआ है। मध्यकालीन जैन हिन्दी का पद काव्य राग-रागिनियों और स्वरों के आरोह-अवरोह का उत्तम निदर्शन है। आकाश-वाणी, दिल्ली के 'भारतीय संगीत' विभाग का ध्यान इधर आकर्षित हुआ है और प्रति बृहस्पतिवार को प्रातः ६·५ पर ये जैन पद प्रसारित किये जाते हैं। उनकी संगीतात्मक लय से पाठक परिचित ही हो गये होंगे।

संगीत के सैद्धान्तिक पक्ष पर भी जैनाचार्यों ने बहुत कुछ लिखा। वह विविध ग्रन्थों में बिखरा हुआ है। आज उसके संकलन, सम्पादन और प्रकाशन की महती आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त, आचार्य पार्श्वदेव का 'संगीत समयसार' एक उत्तम कोटि का ग्रन्थ है। पार्श्वदेव का समय आज से लगभग १००० वर्ष पूर्व कहा जाता है। वे दक्षिण के रहने वाले थे। इस ग्रन्थ का शीघ्र ही सम्पादन और प्रकाशन हो, ऐसा मैं चाहूँगा। इससे

भारतीय संगीत के छात्र मौलिक अध्याय पढ़ सकेंगे । उन्हें यह भी विदित हो जायेगा कि संगीत में जैनों का कितना व्यापक और ठोस योगदान था ।

इन्हीं बिखरे सूत्रों के आधार पर सिद्ध है कि 'संगीत' शब्द 'गीत' में 'सम्' उपसर्ग लगाकर बना है, जिसका अर्थ होता है गीत सहित, अर्थात् नृत्य और वादन (अंगभूत क्रियाओं) के साथ किया गया गीत संगीत कहलाता है । जैन आचार्य संगीत के दो भेद मानते हैं—सुसंगीत और कुसंगीत । प्रथम में भक्ति-मूलक शान्तरस प्रधान होता है । इसकी तल्लीनता स्वसमय में आत्म-प्राप्ति का मूल आधार होती है । द्वितीय में आठ रस (शृंगार, वीर, रौद्र, अद्भुत, हास्य, बीभत्स, करुणा और भयानक) मुख्य होते हैं । इनसे इन्द्रियां सन्तुष्ट होती हैं । यह केवल मनोरंजन के लिये होता है ।

'संगीत' में 'गीत' प्रमुख है, वाद्य और नृत्य सहायक-भर हैं । वाद्य संगीत का और नृत्य वाद्य का अनुसरण करता है । तीनो मिलकर जिस लय को जन्म देते है, वह 'श्रोत्रनेत्रमहोत्सवाय' होती है । उससे श्रोत्र, नेत्र एक महोत्सव में डूब-से जाते है । लीन हो जाते हैं । मूर्छित हो जाते हैं । एक में लीनता अन्यों से मूर्छा ही है । इसे एकाग्रता भी कहते हैं किन्तु यह सहज होता है, इसमें प्रयत्न नहीं करना पड़ता । सहजता संगीत की प्राण है । संगीत से अभिभूत होने के लिए 'संगीत मर्मज्ञ' होने की आवश्यकता नहीं है । वह दिल की चीज है । विषधर सर्प और मृग भी संगीत से मोहित हो जाते है । उसके रस में मृग तो अपने प्राणो की भी चिन्ता नहीं करता । संगीत विद्या नहीं कला है । कला में स्वाभाविक तत्त्व ही प्राणवान होता है । संगीत के स्कूल, कालिज और अध्यापक अभ्यास करा सकते हैं, किन्तु जिन्हें जन्म से उसका मूलतत्त्व मिला ही नही, शिक्षा उन्हें संगीतज्ञ नहीं बना सकती । कोकिल को गाना किसने सिखाया और मयूर किस नृत्यशाला में नर्त्तक बना ? प्रकृति संगीतमय है, उसमे कहीं विवाद नहीं, शास्त्रार्थ नहीं, वह इन सबसे ऊपर है । वह अनहदनाद से विशद है । किन्तु, उसे सुनने के लिये कान तो चाहिए ही ।

संगीत के दो उपयोगी शब्द हैं—श्रुति और स्वर । दोनो संगीत की ध्वनियां है । दोनों में कोई अन्तर नहीं, किन्तु फिर भी शास्त्री लोग उनमें भेद देख पाते हैं । संगीत में 'श्रुति' शब्द चौंकाने वाला नहीं है । संगीत के प्राचीन आचार्यों ने सुरीली ध्वनियों के एक समूह में-से २२ ऐसी चुन लीं, जिनमे आरोह-अवरोह है । उनसे संगीत प्राणवान् बना है । इन्हें ही श्रुति कहते हैं ।

'भारतीय संगीत' के निदेशक आचार्य बृहस्पति उस दिन परम पूज्य मुनि श्री विद्यानन्द जी के दर्शन करने आये । वे संगीत के प्रकाण्ड पण्डित और मुनि श्री संगीत के सहज पारखी । दोनों में संगीत पर चर्चा चली । आचार्य जी ने सुझाव दिया कि 'जैन संगीत' पर एक ग्रन्थ प्रकाशित होना ही चाहिये, यहाँ तक कि उन्होंने निर्देशन देना तक स्वीकार किया । 'श्रमण जैन भजन प्रचारक संघ, दिल्ली' के कुछ सदस्यों ने, जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, इस सुझाव की गम्भीरता समझी । आज यह पत्रिका उसकी एक कड़ी है । वैसे संघ का विचार 'संगीत समयसार' का सम्पादन और प्रकाशन भी है ।

यदि पाठकों को यह लघु प्रयत्न भाया और रुचा तो मैं अपने प्रयास को कृतकार्य समझूंगा ।

डॉ. प्रेमसागर जैन

# जैनदर्शन में शब्द

## (जड़ अर्थात् पुद्‌गल–Matter सिद्ध किया है)

'सद्दो खंधप्पभवो खंधो परमाणु संगसंघादो।
पुट्टेसु तेमु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो ॥'

*आचार्य कुन्दकुन्द पंचास्तिकाय—७९*

—द्रव्यकर्णेन्द्रिय के आधार से भावकर्णेन्द्रिय के द्वारा जो ध्वनि सुनी जाय, उसे शब्द कहते है। वह शब्द अनन्त परमाणुओं के पिण्ड (स्कन्ध) से ही उत्पन्न होता है। क्योंकि जब स्कन्धों का परस्पर सघर्षण होता है, तब शब्द उत्पन्न होता है। अनन्त परमाणुओं की पिण्ड, स्वभाव से ही उत्पन्न शब्द योग्य वर्गणायें इस लोक मे सर्वत्र व्याप्त है। जहाँ-जहाँ शब्द के उत्पन्न करने योग्य बाह्य साधन मिल जाते है, वहा ये शब्दवर्गणायें स्वत: शब्द रूप परिणत हो जाती है। 'आकाशगुण: काणादै-रिष्टा:।'—कुमारिलभट्ट. श्लोकवार्तिके। महर्षि कणाद शब्द को आकाश का गुण बताते है।

यदि वास्तव में शब्द आकाश का गुण होता तो कर्णेन्द्रिय द्वारा वह ग्रहण में न आता क्योंकि आकाश तो अमूर्तिक है। अमूर्तिक पदार्थ का गुण भी अमूर्तिक होना चाहिये। शब्द तो मूर्तिक है, इसीलिये वह मूर्तिक इन्द्रियो, रेडियो, टेपरिकार्ड आदि द्वारा पकड़ा जाता है।

शब्द दो प्रकार का होता है—एक प्रायोगिक, दूसरा वैश्रसिक। जो शब्द पुरुष आदि के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, वह प्रायोगिक कहलाता है। और जो शब्द मेघ आदि से उत्पन्न होता है, उसे वैश्रसिक कहते है। अथवा उस शब्द के दो भेद हैं—भाषा और अभाषा। उनमें भाषात्मक शब्द अक्षर-अनक्षर के भेद से दो प्रकार का है। प्राकृत, सस्कृत, आर्यम्लेच्छादि भाषा-रूप जो शब्द है वे सब अक्षरात्मक है। और जो द्वीन्द्रियादिक जीवो के शब्द है तथा केवली भगवान की जो दिव्यध्वनि है, वह अक्षरात्मक और अनक्षरात्मक है। अभाषात्मक शब्दो के भी दो भेद है—एक प्रायोगिक, दूसरा वैश्रसिक। प्रायोगिक तो तत-वितत-घन-सुषिरादि रूप होते है। तत शब्द उसे कहते है जो वीणादि से उत्पन्न होता है। वितत शब्द ढोल-नगाड़े आदि से उत्पन्न होते है। झांझ-करताल आदि से उत्पन्न होने वाले शब्द घन कहे जाते है और जो बांसादि से उत्पन्न हो, वे शब्द सुषिर कहलाते है। जो मेघादि से उत्पन्न होते है वे वैश्रसिक अभाषात्मक शब्द होते है। ये समस्त प्रकार के ही शब्द पुद्‌गल स्कन्धो (मैटर) से उत्पन्न होते है।

…"जितने भी भाषा रूप या अभाषा रूप शब्द-लोक में होते है, उनका उपादान कारण ये भाषावर्गणायें हैं तथा

---

१—'साक्षर एवं च वर्णसमूहान्नैव विनार्थगतिर्जगति स्यात् ॥'—महापुराण २३।७३
—इसके सिवाय वह दिव्यध्वनि अक्षर रूप ही है क्योंकि अक्षरो के समूह के बिना लोक में अर्थ का परिज्ञान नहीं होता।

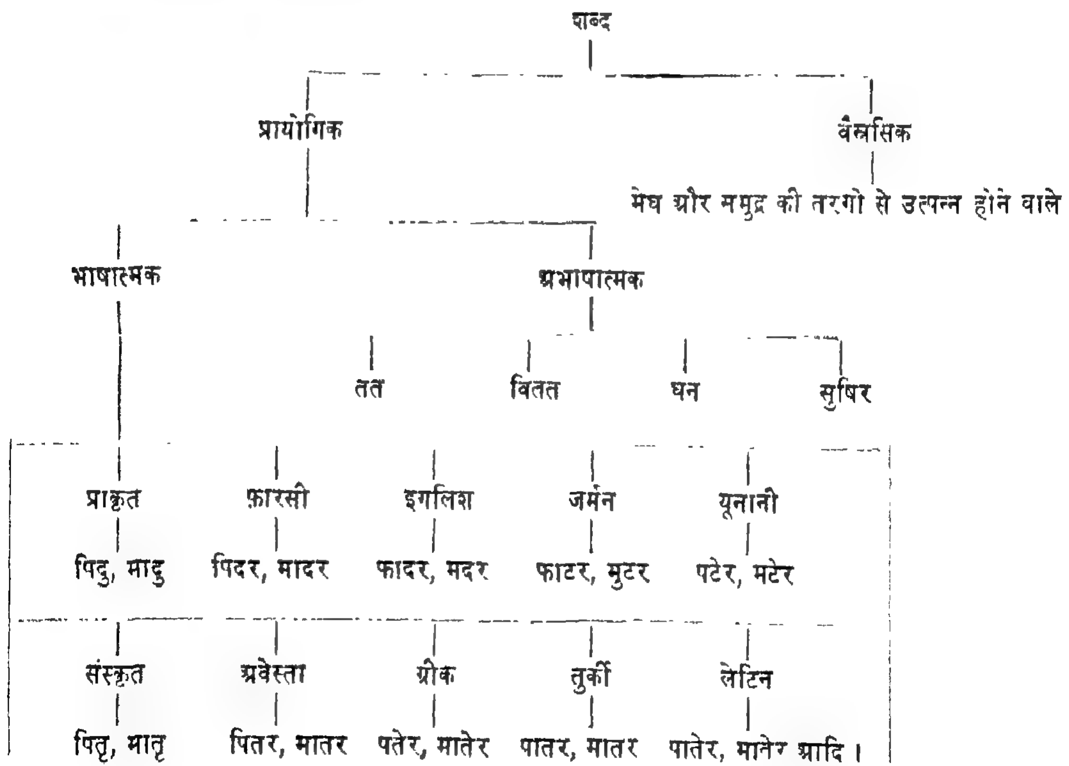
इनके शब्दरूप परिणमन में निमित्त-कारण स्थूल स्कन्धों का परस्पर मिलना (टकराना) है। जैसे ताली बजाना, ओंठ-तालु हिलाना, बाजा बजाना, पृथ्वी पर पग रखना, पानी का परस्पर धक्का होना, वायु का धक्का भीत आदि को लगना, मेघों का मिलना आदि। इस तरह अन्तरंग, बहिरंग कारणों से शब्द पैदा होता है। ये शब्द वही तक सुनाई पड़ते है, जहाँ तक भाषा-वर्गणायें परस्पर एक दूसरे को शब्दायमान करती हुई जा सके। यह निमित्त-कारण के बल के ऊपर निर्भर है। बहुत जोर से ओठ-तालु हिलाने पर शब्द दूर तक जा सकेगा, यदि मन्दता से ओठ-तालु हिलायें तो बहुत कम दूरी तक ही शब्द जा सकेगा। शब्द अमूर्तिक-आकाश का गुण कभी नही हो सकता, क्योंकि अमूर्तिक के गुण अमूर्तिक तथा मूर्तिक के गुण मूर्तिक होते है। यदि शब्द अमूर्तिक होता तो कानों से नही सुन पड़ता, न यह किसी से रुक सकता। यदि हम अपने हाथों को मुँह के ऊपर लगाकर बोले तब हम देखेंगे कि शब्द रुककर निकल रहा है। श्लोकवार्तिक में शब्द मूर्तिक है, इसकी चर्चा इस प्रकार की है—

'प्रोक्ता शब्दादिमन्तस्तु पुद्गला:' स्कन्धभेदत:।
तथा प्रमाण सद्भावादन्यथा तदभावत: ॥'—

—स्कन्ध रूप से परिणमन करने वाले पुद्गल ही शब्दादिरूप होते है, यही बात प्रमाण सिद्ध है। यदि स्कन्धन हो तो सुन न पड़े। इस प्रकार शब्द पुद्गल-द्रव्य की पर्याय है। —पचास्तिकाय, टीका ब्र० सीतल प्रसाद, (सूरत प्रति), पृ० ३४८ ॥'

अत: शब्दो का अन्त:पुर पुद्गल स्कन्ध है।

मन्दिर, मूर्ति, लिपि और शब्द ये रूप, रस, गन्ध, स्पर्शयुक्त होते है। यह पुद्गल-परिवार आत्म-साधना में परम उपकारक है।




१—पुद्गल द्रव्य—"पूरयन्ति गलन्ति इति पुद्गला:।"
—जो पूरें और गलें उन्हे पुद्गल कहते हैं। शब्द भी पुद्गल है, क्योंकि रुकता है।
—बृहद्-जैन शब्दार्णव, पृष्ठ ५४०

'प्राकृते संस्कृते चापि स्वयंप्रोक्तः स्वयम्भुवा ।।'—

—पाणिनि शिक्षा, ३

'अकार: सर्ववर्णाग्रः प्रकाशः परमः शिवः ।
आद्यमन्त्येन सयोगादहमित्येव जायते ।।'—

नन्दिकेश्वरकाशिका, ४

'अ' अक्षर समस्त वर्णाक्षरों में प्रथम है। यह शास्त्र के द्रव्यात्मक स्वरूप का जनक होने से प्रकाशात्मक है, परम (उत्कृष्ट) है तथा शिव है। इस आद्य 'अ' का सयोग वर्णमाला के अन्त्य अक्षर 'ह' के साथ कर देने पर 'अहं' पद बनता है। अहं स्ववाचक, आत्म-बोधक शब्द है। अतः अक्षरों का सत्य आत्मप्राप्ति मे सहायक होना सिद्ध है।

---

१—"ततं वीणादिकं ज्ञेयं वितत पटहादिकम् ।
घनं तु कांस्यतालादि सुषिरं वंशादिकं विदुः ।"—ब्रहद्द्रव्य संग्रह टीका, १६ पृ० ५१

# संगीत-शिक्षक श्री ऋषभदेव

'जय देव दिणगप्प विमलमणीश,
जय जिण तिहुयण चूडामणीश ।
जय जीव लोयबधवदयाल,
जय पुरु 'तित्थकर' सामिसाल ॥'—

*—पुष्पदन्त, महापुराण ३७।६।५*

सूर्य के समान निर्मल (सूर्यकान्त) मणि के ईश रूप, त्रिभुवन मे चूडामणि, जीव लोक के बान्धव, दयालु हे आदि तीर्थंकर स्वामी ! आदिनाथ ! आपकी जय हो ।

श्रमण सस्कृति अर्थात् जैन अनुश्रुति के अनुसार युगादि पुरुष वृषभदेव ने सगीत विद्या का आविष्कार किया था और अपने पुत्र कुमार वृषभसेन को प्रथमतः सगीत विद्या की शिक्षा दी थी। इसका स्पष्टीकरण सप्रमाण आगे चलकर करेंगे ।

वाचनाचार्य सुधाकलश सगीतोपनिषत् सारोद्धार मे लिखते हैं—

'इति जैनमते तूर्यत्रिकस्योत्पत्तिरिष्यते ।
हरात् सगीत निष्पत्तिः प्रसिद्धा त्वखिले जने ॥'

—२।४

—इस प्रकार नवम शखनिधि से उपरिवर्णित तूर्यत्रिक (तूर्य, वाद्य और नाटक) की उत्पत्ति जैनमत मे इष्ट मानी गई है । संगीत की उत्पत्ति शिव से हुई, यह लोक-प्रसिद्धि है ।'—

हर (शिव) भगवान ऋषभदेव का ही नामान्तर है । जिनसहस्रनामस्तोत्र मे आचार्य जिनसेन ने कहा है'—

'शिव शिवपदाध्यासात् दुरितारि हरो हरः ।
शंकर कृतश लोके शभवस्त्वं भवन्मुखे ॥'—९

—शिवपद को देने वाला है, अतः तू शिव कहलाता है । पापो का नाश करने के कारण तू हर कहलाता है । शान्ति करने वाला है, अतः तू शकर है । तथा सुख देने वाला है अत तू शंभु कहा जाता है ।

जैनेन्द्र व्याकरण—'शंकरी जिनविद्या'—

(सूत्र २।२।१९)—*आचार्य पूज्यपाद*

मेदिनी कोष—'दिगम्बरः स्यात्
क्षपणे नग्ने तमसि शंकरे ।'—२६७

'दिगम्बरः शिवः', जैनभेदः ।'

*—वाचस्पत्यम्*

डॉ० रामधारीसिह की मान्यता भी 'वाचस्पत्यम्' की मान्यता का समर्थन करती है । शिव ऋषभदेव के अतिरिक्त अन्य नही थे, ऋषभदेव का एक नामान्तर शिव

१—जैन साधना जहाँ एक ओर बौद्ध साधना का उद्गम है, वहाँ दूसरी ओर वह शैवमार्ग का भी आदि-स्रोत है ।'—संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ ७३८, रामधारीसिह दिनकर

था। हर, शंकर और शंभु भी उनके ही नामान्तर थे। श्री दिनकर की तो मान्यता है कि शैवमार्ग का विकास जैन साधना से ही हुआ है। वाचस्पत्य ने शिव को जैन का भेद माना है और दिनकर ने शैवमार्ग की उत्पत्ति जैन साधना से बताई है। इन दोनों मान्यताओं को आचार्य जिनसेन के जिनसहस्रनामस्तोत्र मे वर्णित ऋषभदेव के नामभेदो के परिपेक्ष्य मे पढ़ा जाय तो इसमें सन्देह नहीं रहता कि ऋषभदेव ही हर, शिव, शंभु और शंकर थे और शैवसाधना का निकास उन्ही के मार्ग से हुआ था।

अतः संगीतोपनिषत् सारोद्धार मे जो यह बतलाया है कि तूर्य, वाद्य और नाटक की उत्पत्ति चक्रवर्ती (भरत) की नौ निधियो मे से अन्तिम निधि शख से हुई थी, और सगीत की निष्पत्ति हर से हुई, यहाँ हर का आशय ऋषभदेव है।

आचार्य जिनसेन का कथन है—

'विभुर्वृषभसेनाय गीतवाद्यार्थसंग्रहम्।
गन्धर्वशास्त्रमाचख्यौ यत्राध्यायाः परः शतम्॥'

—आदिपुराण, १६।१२०

—मनुकुलतिलक श्री ऋषभदेव ने अपने पुत्र वृषभसैन को गीत, वाद्य तथा गान्धर्व विद्या का उपदेश दिया, जिस शास्त्र के सौ अध्याय से ऊपर है।

भगवान् ऋषभदेव के व्यक्तित्व के नाना[1] रूप है। वे अपनी गृहस्थ अवस्था मे भी अलौकिक ज्ञान और बुद्धि के स्वामी थे। उन्होने अपने पुत्रो और प्रजा को षट्कर्मों का – असि, मसि, कृषि, विद्या, वाणिज्य और शिल्प-उपदेश और शिक्षण दिया था। चौंसठ विद्याओ मे से सगीत विद्या का उपदेश और शिक्षण अपने पुत्र वृषभसैन को दिया।

भगवान् ऋषभदेव ने जिस संगीत विद्या का आविष्कार किया था, उसी का विविध रूपों में विकास होता गया। किन्तु इसमे सन्देह नहीं है कि संगीत के आद्य आविष्कारक, शिक्षक और पुरस्कर्ता ऋषभदेव थे।

**जैन-मन्दिरों में संगीत—**

संगीत एक भक्तिविह्वल भक्त के हृदय की भक्ति को प्रगट करने का एक सफल माध्यम है। प्रारम्भ मे सगीत का उपयोग भगवद्भक्ति के लिये ही होता था। पश्चाद्वर्त्ती काल मे हृदय की विविध भावाभिव्यक्ति के लिये उसका उपयोग होने लगा। सगीत वस्तुत. तन्मयता, एकतानता और ऐकात्म्य का साधन है। यही कारण है कि भगवान् के प्रति सर्वतोभावेन आत्म-समर्पण और तन्मय होने के लिये सगीत का उपयोग किया जाता रहा है। नन्दीश्वर द्वीप के अकृत्रिम चैत्यालयों मे जाकर देव और देवियाँ अपनी भक्ति का निवेदन संगीत के माध्यम से ही करती है।

जिनालयो मे सदा से सगीत का उपयोग जिनेन्द्र-दर्शन, पूजन और स्तवन के लिये किया जाता रहा है। एक भक्त व्यक्ति भगवान् जिनेन्द्रदेव के दर्शन-पूजन करने के पश्चात् बाहर आया तो वह अपने भक्ति-पूरित मानस में जिनेन्द्र-भवन (जिन-मन्दिर) का स्मरण पुनः-पुनः करता है और उसके मानस-पटल पर वे चित्र पुनः-पुनः उभरने लगते है, जो दृश्य उसने जिनमन्दिर में देखे थे। वह कहता है—

'दृष्ट जिनेन्द्रभवन सुर-सिद्ध-यक्ष—
गन्धर्व-किन्नर-करार्पित-वेणु-वीणा।
संगीत मिश्रित-नमस्कृत-धीरनादै—
रापूरिताम्बर-तलोरु-दिगन्तरालम्॥'

—इष्टाष्टक स्तोत्र ४

—मैंने भगवान् जिनेन्द्रदेव के भवन (मन्दिर) के दर्शन किये थे, जहाँ देव, सिद्ध, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर अपने हाथों मे बासुरी, वीणा आदि वाद्य लिए हुए थे और मधुर संगीत

१—'इति नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभः।'—भागवत ५।६।३४

के साथ वे भगवान् को नमस्कार कर रहे थे। उनकी संगीत-ध्वनि दिग्दिगन्त मे व्याप्त हो रही थी।

'दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलसद्विलोल—
मालाकुलालिललितालक विभ्रमानम्।
माधुर्यवाद्यलयनृत्य विलासिनीनाम्
लीला चलद्वलय नूपुर नाद रम्यम् ॥'—

—दृष्टाष्टक ५

—मैने भगवान् जिनेन्द्र का मन्दिर देखा है, जहाँ मनोहर वाद्य बज रहे है और वाद्यों की लय पर बालों मे मालायें धारण करने वाली स्त्रियाँ भक्तिपूर्वक नृत्य कर रही हैं। उनके नृत्य के कारण उनके वलय और नूपुरों की मधुर ध्वनि से जिनालय झकृत हो रहा है।

जैनालयेषु संगीत[1]पटहाम्भोदनिस्स्वनैः।
यत्र नृत्यन्त्यकालेऽपि शिखिनः प्रोन्मदिष्णवः ॥'

—महापुराण, आचार्य जिनसेन ४।७७

—जैन मन्दिरों मे सगीत के समय जो तबले बजते हैं, उनके शब्दो को मेघ का शब्द समझ कर हर्ष से उन्मुक्त हुए मयूर असमय मे ही, ऋतु के बिना ही नृत्य करते रहते है।

'यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे।
यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदाखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाण गमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः।
संगीत स्तुति मगलैः प्रसरता मे सुप्रभातोत्सवः ॥'

—सुप्रभात स्तोत्र १

—तीर्थकरों के स्वर्ग से अवतरण-उत्सव (गर्भकल्याणक) के समय, जन्माभिषेक उत्सव मे, तप-ग्रहण के अवसर पर, सर्वज्ञत्व-ज्ञान प्राप्ति के उत्सव मे और निर्वाण-गमनोत्सव में जिन संगीत युक्त स्तुतियों से अलौकिक पूजा की गई थी, वे मेरे लिये प्रभात को उत्सव रूप करें।

'अभिषेकप्रेक्षणिका क्रीडनसंगीतनाटकालोकगृहैः।
शिल्पिविकल्पितकल्पनसंकल्पातीतकल्पनैः समुपेतैः॥

—नन्दीश्वर भक्ति २१

—(इन अकृत्रिम जिन चैत्यालयों में) जिन मण्डपों मे बैठ कर अभिषेक देखते है, ऐसे मण्डप है। क्रीडाभूमि, संगीतभूमि, नाटक शालाओं से सुशोभित है। यह रचना कारीगरों द्वारा कल्पना की हुई रचना के भेदों के विचार से सर्वथा रहित है अर्थात् किसी चतुर कारीगर ने भी उनके बनाने की कल्पना नही की है। ये सब तोरण आदि अकृत्रिम है।

'प्रबल पवनाभिघातप्रक्षुभित-
समुद्रघोषमन्द्रध्वानम्।
दध्वन्यतं सुवीणावंशादि सुवाद्य-
दुन्दुभिस्तालसमम् ॥'

— नन्दीश्वर भक्ति ५३

—प्रबल वायु के घात से क्षोभित हुए समुद्र के गभीर शब्द के समान जिनके मनोहर शब्द हो रहे है, ऐसे वीणा, वशी, आदि सुन्दर बाजो के साथ दुन्दुभि बाजे, ताल के साथ-साथ बड़ी मनोहर ध्वनि से बजते रहते है।

धर्म-साधना मे भगवद्भक्ति भी एक प्रभावक साधन है। भक्ति हृदय से निष्पन्न होती है। जब हृदय आराध्य के गुणो के प्रति अनुरक्त होकर उद्गार प्रगट करने को आतुर हो उठता है, तब भक्ति का निर्झर छन्द और शब्दो में फूट पड़ता है। आचार्य समन्तभद्र, मानतुग, वादिराज आदि महान् आचार्यों के मन मे जब भक्ति का उद्रेक हुआ तो उनकी भक्ति को वाणी मिल गई और वह स्तुति-स्तोत्र के रूप मे प्रगट हुई। साधारण जन अपनी भक्ति को इन्ही

१—पटहः [पटेन हन्यते—पट+हन्+ड] धौंसा, नगाड़ा, ढोल, तबला

—संस्कृत-हिन्दी कोष, ले० आप्टे, पृष्ठ ५६५

आचार्यों के स्तुति-स्तोत्रों द्वारा पुष्ट और सन्तुष्ट कर लेता है। किन्तु इससे उसकी प्रभुलीनता, उसके गुण-स्मरण में कोई न्यूनता नहीं आती, बाधा भी नहीं आती। वह ऐसे स्तुति-स्तोत्रों से ही प्रभु के चरणों में अपने को समर्पित कर देता है और उनके गुण-स्मरण में तन्मय हो जाता है। वस्तुतः भक्ति बाह्य से हटाकर आभ्यन्तर की ओर उन्मुख करने का एक अमोघ साधन है।

'शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा।
भक्तिर्नो चेदनवधि सुखावंचिका कुंचिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो।
मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहमुद्राकपाटम् ॥'

—एकीभाव० १३

—हे जिनेन्द्र! किसी के पास शुद्ध ज्ञान और शुद्ध चारित्र हो किन्तु यदि आपमें उसकी भक्ति न हो तो उसे मोक्ष की प्राप्ति होना अशक्य है। क्योंकि अनन्त सुख संपादन करने वाली तो आपकी भक्ति ही है। जो व्यक्ति मुक्ति चाहता है, उसे मोक्षद्वार की भक्तिरूपी कुंजी अपने पास रखनी चाहिये। अन्यथा मजबूती से महामोह का ताला लगे हुए कपाट को कैसे खोला जा सकेगा। ('आसन्न भव्या जिन भक्ति मुख्या' प्रतिष्ठापाठ)। यदि नूपुर शब्द राग उत्पन्न करते हैं तो मंदिर का घंटानाद भक्ति उत्पन्न करे, कौनसा आश्चर्य है? यद्यपि ये दोनों शब्द अनक्षरात्मक हैं। क्रोधयुक्त शब्दों में भय है। परन्तु शान्तियुक्त शब्दों में अभय है।

'केशग्रन्थौ करौ प्रोक्तौ तौ दिगम्बरसूरिणा।
उत्तानवंचितौ किंचित् पार्श्वगौ त्रिपताकरौ ॥'

—संगीतमयसार ६।८६

—दिगम्बराचार्यों ने वन्दना-मुद्रा के अवसर के लिये बताया है कि दोनों हाथों को जूड़े की तरह बांधना चाहिये, वे अधिक ऊँचे न हों, कुछ बगल की ओर झुकाते हुए तीन आवर्त देने चाहिये।

'मत्वेति जिनगेहादि त्रिः परीत्य कृताञ्जलिः।
प्रकुर्वंस्तच्चतुर्दिक्षु त्र्यावर्तां शिरोनतिम् ॥८॥
घोरसंसारगंभीरवारिराशौ निमज्जताम्।
दत्तहस्तावलम्बस्य जिनस्यार्चार्थमाविशेत् ॥६॥

—दशभक्ति संग्रह पृ० ६०

—"जिन-मन्दिर, जिन प्रतिमा (मूर्ति) व निर्वाण भूमि आदि की तीन प्रदक्षिणा देनी चाहिये, हाथ जोड़ना चाहिये, उन जिनमंदिर व जिनप्रतिमा के चारों ओर तीन-तीन आवर्त करने चाहिये, प्रत्येक दिशा की ओर उनके लिए शिरोनति करना चाहिये।

'यो वीतरागस्य परात्मनोऽपि
गुणानुबद्धं गणरागशुद्धम्।
पुण्यैकलोभात् परया च भक्त्या
गायेत सुगीतं स तु मुक्तिगामी ॥'

संगीतोपनिषत्सारोद्धार ३।२

वीतराग परमेश्वर है। वीतराग होने से वह निरिच्छ है—न रागवशीभूत है और न द्वेषपर है। तथापि उनके गुणों में अनुबद्ध एवं गणशुद्ध, रागशुद्ध सुगीत को पुण्य-पवित्र भावना से परमभक्तिपूर्वक जो गाता है, वह परम्परा से मोक्षगामी होता है।—

'सरभसमिलितानां नाकलोकांगनानां
तत-घन-सुषिरस्यानद्धवाद्यैश्च नृत्यैः।
त्रिभुवनजनतायाः सौख्यकृद्यः स्ववाण्या
समवशरणभूमौ वीतरागो मुदे सः।"

— तत्रैव, ४।१

भगवान् तीर्थंकर के समवशरणसभा में, स्पर्धा एवं अहंपूर्विकापूर्वक सम्मिलित स्वर्ग की अंगनाओं (अप्सराओं) ने, तत, घन, सुषिर और आनद्ध (क्रमशः वीणा, कांस्य, वंशी और मुरज) इन चतुर्विध वाद्यों के साथ किये गए

नृत्य से, समुपस्थित त्रिभुवन के जनसमूह को प्रसन्न किया। किन्तु इस ललित नृत्य से अधिक सुख तीर्थकर की दिव्य ध्वनि से उनको प्राप्त हुआ। समवसरण भूमि में इस प्रकार सर्वोत्तम सुखानन्द की वृष्टि करने वाले वीतराग प्रभु सबके लिए आनन्दप्रद हों।—

नाट्यं केऽपि च ताण्डवं च
कतिचिल्लास्यं च केचिद्वरं।
प्रोन्मीलत्करणाङ्गहार-
ललितं नृत्यन्ति हृष्टा: सुरा: ॥
प्राकारत्रितये निजस्थितिपरा
वाद्यैस्तु यद् भक्तितो।
ज्ञानोत्पन्नमह: स वोऽस्तु-
सुखदस्तीर्थंकर: सद्गिरा ॥'
—*तत्रैव*, ६।२

भगवान वृषभदेव की समवसरण [धर्मसभा] में, तीन प्रकार के वलयों में, अपनी-अपनी मर्यादा के अनुकूल प्रसन्न-मुदित देवगणों में कोई नाट्य में व्यस्त है, कोई ताण्डव प्रस्तुत कर रहा है, कुछेक लास्य में मग्न है और इस प्रकार नेत्रादि इन्द्रियों के हाव-भाव तथा अंगविक्षेप-पूर्वक वे ललित नृत्य उपस्थित कर रहे हैं। वे अमरकुल भक्ति सहित वाद्यों के साथ नृत्यनिरत हैं। ऐसे देवताओं के उल्लास-तरंगित समय में अपनी सद्वाणी (दिव्य-ध्वनि) से उत्पन्न हुए केवल ज्ञान के उत्सव को अतिशय करते हुए सुखद तीर्थंकर हमें-तुम्हें आनन्दप्रद हों।—

'द्राक्षापानकमोदकादिरसवत्यास्वादवन्ध्या अपि।
स्वर्गस्था क्षपयन्ति कालमखिलं
यस्मिन्निलीना: सुखम् ॥
दत्ते यत् परमं पदं जिनपतिर्देवो यदाराधित:।
सत्पिण्डप्रभव: स कोऽपि-
विजयी नादो विशुद्ध: सताम् ॥'
—*तत्रैव*, २।२

विशुद्ध नादका आश्चर्यजनक प्रभाव है। स्वर्ग के देवों को यद्यपि द्राक्षारस तथा मोदक-मिष्टान्न उपलब्ध नहीं होते तथापि वे इस नाद के (संगीत के) मधुर आस्वादन से परितृप्त हो कर अपने समय का सुखपूर्वक व्यतियापन करते हैं। यह नाद परमपद देने वाला है और इससे परमदेव जिनेश्वर की आराधना की जाती है। ऐसे उत्तम प्रभाव का धारक विशुद्ध नाद शुद्धसत्त्व सज्जनों के पवित्र काया में उत्पन्न होता है। इस उत्तम नाद की विजय हो।

'मनु पंचदशो राजराजास्त्रिखेन्द्रपत्यसू:।
इक्ष्वाकुर्वृषभोऽस्तश्रीर्नटन्नीलाजसात्ययात् ॥'
—*आशाधरकृत त्रिषष्टि० स्मृ० शास्त्र १८*

राजाओं के राजा, बहुपुत्र पन्द्रहवें मनु (कुलकर) इक्ष्वाकु श्री वृषभदेव ने नीलांजना [तिलोत्तमा] नाम्नी सुरनर्तकी के नृत्याभिनय समय में देहपात को देखकर (संसार क्षण भंगुरता का बोध होने से) तत्क्षण राज्यश्री का परित्याग कर दिया। वैराग्य उत्पन्न हुआ और मोक्ष की ओर चल पड़े।

'मग निलजनेचें नृत्यमरण देखौनि वैराग्य उपजलें।
भरथासि राज्य देउनि आदिजिनु तपासि निघाला ॥
'प्रयाग वडातलि सर्वसगु-
परित्यागु करौनी जे आदि दर्शन।
आदि दिगम्बर मद्रा धरिलि।
जेन दिक्षेचा अङ्गिकारू केला ॥'
--*आचार्य गुणकीर्ति धर्मामृत, पृ० ६७ (मराठी)*

एक दिन नीलांजना नाम की सुरनर्तकी का नृत्यमरण (नृत्य अवस्था में आकस्मिक प्राणवियोग) देखकर वृषभ-देव को वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने भरत को राज्य देकर तपोवन के लिए चले। प्रयाग में वटवृक्ष के नीचे सर्वसंग का परित्याग कर आदि दर्शन, आदि दिगम्बर मुद्रा धारण की। जैन दीक्षा को अंगीकार किया।

१—एवमुक्त्वा प्रजा यत्र प्रजापतिमपूजयन्।
प्रदेश: स प्रयागाख्यो यत: पूजार्थयोगत:।'—आचार्य जिनसेन, हरिवंश पुराण, ६।९६

'भूपालयिद धन्वासियिद सर्व । भूपालि गोडेयन मुँदे ।
श्री पुरुनाथ पाडिदरेल्लर । पाप लेपव नैदुवते ॥'

– *भरतेश वैभव* २।७७

—उन संगीत विशारदो ने, भूपाली तथा धन्वासी राग में, राज समूह अधिपति भरत चक्रवर्ती के सम्मुख, श्री वृषभदेव तीर्थंकर (पुरुनाथ) की स्तुति करते हुए, इस प्रकार गायन किया कि जिसे सुनकर सब श्रोताओं के पाप नष्ट हो जाएं।

'दिव्यसुखव दिव्यदर्शन बोधव
दिव्य शक्तिय दिव्य पदवा ।
दिव्य सिद्धिय नेले गाणिप
देवन 'दिव्यध्वनिय' पाडिदरु ॥'

—*भरतेश वैभव* १।८७

—भगवान् वृषभदेव की ध्वनि दिव्य है क्योंकि भगवान् तीर्थंकर स्वयं दिव्य है। भगवान् का सुख, दर्शन, ज्ञान एवं शक्ति दिव्य है। अतएव भगवान् की सिद्धि भी दिव्य है। इस प्रकार अशेष दिव्यध्वनि के दिव्य गुणों को गायकों ने भरत की राजसभा में गाया।

"न हि भवति निर्विगोपकमनुपस्यति-गुरुकुलविज्ञानम् ।
दर्शित पश्चाद्भावं पश्यत नृत्यं मयूराणाम् ।।"—

—गुरुकुल में [गुरु के सान्निध्य में] यथाविधि रहकर अध्ययन न करने वाले का ज्ञान अपने त्रुटिरूप छिद्रों का आच्छादन नहीं कर सकता। उदाहरणार्थ नृत्य करते हुए मयूरों का पृष्ठ-भाग देखा जा सकता है। अर्थात् नृत्य करते हुए मयूरपक्षी का अग्रभाग बहुत-रमणीय प्रतीत होता है। परन्तु उसका गुह्यभाग पीछे से दिखाई देता है जो नितान्त अरोचक लगता है। यदि वह किसी गुरुकुल में शिक्षण-प्राप्त नर्तक होता तो अपनी नृत्य-कुशलता के साथ गुह्य-गोपन भी जानता होता।

# शान्तरस

'मोक्षाध्यात्मसमुत्थो रसः शान्तरसो नाम सम्भवति।'

—नाट्यशास्त्र, गाथा ३३, पृष्ठ ३२४।

—मोक्ष और अध्यात्म की भावना से जिस रस की उत्पत्ति होती है, उसको शान्तरस नाम देना सम्भाव्य है।

'सर्वमंगल निधौ हृदि यस्मिन् संगते निरुपमं सुखमेति।
मुक्तिशर्म च वशीभवति द्राक् तं बुधा नमत शान्तरसेन्द्रम्॥'

—अध्यात्म कल्पद्रुम २।

—शान्तरस सर्व रसों का स्वामी है। श्रेष्ठ है। वह सम्पूर्ण मंगलों का निधि है। उसके हृदयप्रदेश में स्थित होने पर निरुपम सुख की प्राप्ति होती है। इतना ही नहीं, मुक्तिरूप कल्याण की वश्यता उसी से शीघ्रमेव सम्भव होती है। हे बुधो! उस रसराज को नमस्कार कीजिये।

'मज्जन्तु निर्भरममी सममेव लोका,
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण,
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोध सिन्धुः॥'

—आचार्य अमृतचन्द्र, समयसार कलश, ३२।

—इस सम्पूर्ण लोक को व्याप्त कर निर्भर उछलते हुए शान्तरस में समस्त संसार निमग्न हो, अवगाहन करे। अन्य रस विकारी होने से विभ्रमकारी है, यह शान्तरस ही विभ्रमों के पर्दे को गलित कर ऊपर उठने वाला दिव्य बोध समुद्र है।

"वृत्ते स्यात् सात्वतीवृत्ति वैदर्भीरीतिरुत्तमा।
शान्तो रसो विजानीयाद् गद्यविद्या विशारदैः॥"

—आचार्य पार्श्वदेव संगीत समयसार, अधि० ४/१६६।

—गद्यविद्या में निपुण लोगो ने वृत्तियों में सात्वती वृत्ति को श्रेष्ठ माना है; रीतियों में वैदर्भी-रीति को उत्तम माना है और रसों में शान्तरस को श्रेष्ठ कहा है।

"निद्दोसमणं समाहाणं संभवो जो पसंतभावेणं,
अविकारलक्खणो सो रसो पसंतोत्तिनायव्वो॥"

—अनुयोगद्वार, प्रशांतरस विषय १८, पृ० २७०।

—निर्दोष मन जिसका समाधान है, प्रशान्तभाव से जिसकी उत्पत्ति है, अविकार जिसका लक्षण है, वह रस प्रशान्तरस है, ऐसा जानना चाहिए।

**'सम्यग्ज्ञान समुत्थानः शान्तो निःस्पृहनायकः ।**
**रागद्वेष परित्यागात्सम्यग्ज्ञानस्य चोद्भवः ॥'**

—वाग्भट्टालंकार, ५३/२ ।

—शम अथवा तत्वज्ञान से शान्तरस की उत्पत्ति होती है। शान्तरस का नायक (पुत्र धनादि को) इच्छाओं से रहित होता है। यथार्थज्ञान की उत्पत्ति रागद्वेषादि के परित्याग से ही होती है।

**"स्तुत्या पर नाभिमतं हि भक्त्या**
**स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि ।**
**स्मरामि देव प्रणमामि नित्यं**
**केनाप्युपायेन फल हि साध्यम् ॥"**

—श्री धनञ्जय, विषापहार ३२ ।

—हे वृषभ देव ! स्तुति से उत्कृष्ट मोक्षमार्ग का अन्य कोई उपाय नही बताया गया। अतएव मैं भक्तिपूर्वक आपके उत्तम गुणों का स्मरण करते हुए और प्रणतिपूर्वक आपका भजन करता हूँ। मैं नित्य ही आपका स्मरण करता हूँ तथा प्रणाम करता हूँ। प्रभो ! मै ऐसा इसलिये करता हूँ क्योंकि किसी भी उपाय से फल की सिद्धि करनी है।

आशय यह है कि हेय का त्याग तथा उपादेय का ग्रहण मनुष्य-जन्म का इष्ट है। वह आपकी स्तुति से सिद्ध होता है, भक्ति से मिलता है, स्मृति से उपलब्ध होता है, प्रणाम-नमस्कार निवेदन मे फलित होता है- -निश्चय से यह जानकर मैं आपका भजन करता हूँ। मेरी इस भक्ति का साध्य प्रयोजन इष्ट सिद्धि—आत्मलाभ है। अतः उसकी प्राप्ति में सहायक उपाय का अवलम्बन कर मैं आत्महित में ही प्रसक्त हूं। व्यर्थ स्तुति नही कर रहा। क्रियाकलाप के टीकाकार ने "भक्तिपरक" प्रशस्ति में एक पद्य में लिखा है -

**'भक्तीनां विवृतिः समस्तविषया मोहान्धकारापहा ।**
**भक्तानां प्रतिबोधिनी भवसरित्सशोषिणी सर्वदा ॥**
**कर्मोलूकहतप्रवृत्तिरमला सन्मार्ग-सन्दर्शिनी ।**
**स्याद्वादाभ्युदया प्रचण्डतरणिप्रख्यचिरंनन्दतात् ॥"**

—क्रियाकलाप, २४ ।

भक्तिसम्बन्धी यह विवरण प्रचण्ड सूर्य के समान है। इस विवृति मे सम्पूर्ण भक्ति-विषयों का समावेश है। यह मोह रूप अन्धकार को नाश करने वाली और भक्तों को प्रतिबोध देने वाली है। कर्मरूप उलूक की प्रवृति (चाल) इसके समक्ष हत हो जाती है। यह भक्ति सन्मार्ग को दिखाने वाली है और स्याद्वाद की अभ्युदय कारिणी है। यह चिरकाल पर्यन्त समृद्धि को प्राप्त हो।

अनुभव चिंतामणिरतन, अनुभव है रसकूप*।
अनुभव मारग मोक्ख को, अनुभव मोख सरूप ।।

बनारसीदास, नाटकसमयसार, उत्थानिका १८

आत्मानन्द मे लीन होने को अनुभव कहते हैं। इसे आत्मानुभूति भी कहा जाता है। यह अनुभव चिन्तामणि रत्न है। रस—शान्तरस का तो कूप ही है। मोक्ष का मार्ग है। इतना ही नहीं, मोक्ष का स्वरूप है, अर्थात् मोक्ष ही है।

"सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन ।।"

दर्शनस्तुति १.

"जगत में होनहार होवे, सुर नृप नाँहि मिटावे।
आदिनाथ से को भोजन में अन्तराय उपजावे॥
पारस प्रभु को ध्यान लीन लखि, कमठ मेघ बरसावे।
लखमण-जैसे भ्राता संग जाके सीता राम गमावें॥
प्रतिनारायण रावण से की हनुमत लंक जरावे।
जैसो कमावे, तैसो ही पावे, यों 'बुधजन' समझावे॥
आप-आपको आप कमावे, क्यों पर द्रव्य कमावे॥"

—जैन पद संग्रह, ५वाँ भाग, २१॥

अर्थ—जगत भवितव्य के वशीभूत है। जो होने वाला है वह अवश्य होगा, उसे देवताओं का अधिपति इन्द्र भी अन्यथा नहीं कर सकता, मार्जित नहीं कर सकता। भगवान् आदिनाथ ऋषभ को भावी ने षाड्मासिक (एक दो दिन का नहीं) अन्तराय उत्पन्न किया। भगवान् श्री पार्श्वनाथ की ध्यानमग्न अवस्था को विचलित करने के उद्देश्य से दुष्ट कमठ ने घनघोर जल वृष्टि-रूप उपसर्ग किया। जिनके साथ लक्ष्मण-जैसे बली धनुर्धर भ्राता थे, उन श्रीराघवेन्द्र को पत्नी सीता का वियोग (अपहरण) सहना पड़ा। रावण-सदृश प्रतिनारायण की सौवर्णपुरी लंका को हनुमान ने जलाकर भस्म कर दिया। 'बुधजन' कहते हैं— जो जैसे उपार्जित करता है, वैसा ही पाता है। इस कर्मपुरी में अपने-अपने सुख-दुःखात्मक द्वन्द्वाभिधान को व्यक्ति स्वयमेव कमाता है, कोई अन्य इसके लिये कमाकर नहीं रखता। अथवा जब भला-बुरा उपार्जन अपने ही वश में है, तो मनुष्य पर-द्रव्यरूप बुरे को कमाने (अग लगाने) में क्यों आसक्त रहे और परिणामस्वरूप क्यों कुगति बन्ध करे। क्यों नहीं अपने श्रम को आत्मद्रव्योपार्जन नियुक्त करे।

"आज आनन्द बधावा, आज०
जनम्यो आदीसुर नाभी के भौन।
कीनो सब इन्द्र मिलि मेरु पे न्होंन॥ आज०॥
ऐरावत शक्र चढ्यो गोद में किशोर।
नाचत है अपछरा सु सत्ताइस कोर॥ आज०॥
अजोध्या नगर सब घेरयो देवि-देव।
नर-नारी अचरज यहँ, देखे सब एव॥ आज०॥
'द्यानत' मरुदेवी-पद सची शीष नाय।
धन धन जगमाता, हमें सुखदाय॥ आज०॥

—जैन पद संग्रह, च० भाग, १४२॥

अर्थ—अहो! आज आनन्द का दिन है, बधाइयों की वेला है। श्री नाभिराज के घर श्री आदीश्वर ने जन्म लिया है। सब इन्द्रों ने सम्मिलित होकर सुमेरु गिरि पर भगवान् का जन्माभिषेक किया है। इन्द्र अपनी गोद

में किशोर (बालरूप भगवान्) को विराजित कर ऐरावत पर आरूढ़ हुआ है। इस शुभ समय मे आनन्दोल्लसित होकर सत्ताईस कोटि अप्सराएँ (देव-नर्तकियाँ) नृत्यमग्न हैं। सब देवी-देवो ने अयोध्या नगर को घेर रक्खा है, अर्थात् वे सभी स्वर्ग छोड़कर अयोध्यापुरी में आ पहुँचे है। नगर की स्त्रियाँ एव पुरुष इस आश्चर्य को देख रहे हैं। कवि 'द्यानतराय' वर्णन करते है कि इन्द्रपत्नी शचीदेवी श्री मरुदेवी के चरणो मे मस्तक झुका रही है। कहती है—हे माता ! हे जगन्मातः ! तुम हमें सुखदायिनी हो।

"जयवन्तो जिनविम्ब जगत में, जिनदेखत निज पाया है।
वीतरागता लखि प्रभु जी की विषयदाह विनशाया है॥
प्रगट भयो संतोष महागुण, मनथिरता में आया है।
अतिशय ज्ञान-शरासन पै धरि शुक्लध्यान शर वाया है॥
हानि मोह-अरि चण्ड चौकड़ी ज्ञानादिक उपजाया है।
वसुविधि अरि हरि कर शिवथानक थिर स्वरूप ठहराया है॥
सो स्वरूप शुचि स्वयंसिद्ध प्रभु ज्ञानरूप मन भाया है।
यदपि अचेत तदपि चेतन को चित् स्वरूप दरशाया है॥
कृत्याकृत्य 'जिनेश्वर'—प्रतिमा पूजनीय गुरु गाया है॥"

—जैन पद सागर, प्र० भाग, २३॥

अर्थ—ससार मे वर्तमान समस्त जिन बिम्बों (जिनेश्वर प्रतिमाओ) की जय हो, समस्त जिन बिम्ब जयवन्त हों। जिन प्रतिमा के दर्शन से ही निज (आत्मा) की प्राप्ति होती है। भगवान् की बिम्बित वीतरागता मे विषयाग्नि के प्रशम की शक्ति है। जिन बिम्ब के दर्शन से प्रशमगुण प्रकट हुआ है, महागुण सतोष की प्राप्ति हुई है तथा यह चञ्चलमन स्थिरता को प्राप्त हुआ है। वीतरागदेव ने ज्ञानातिशयरूप धनुष पर शुक्लध्यान रूप बाणसन्धान किया है। उस बाण ने मोहरूप शत्रु की प्रचण्ड चौकडी (क्रोध, मान, माया, लोभ) चतुरग सेना का वधकर ज्ञान-राशि (अनन्त ज्ञानादिचतुष्टय को) को उत्पन्न किया है। भगवान् ने अष्टविध कर्म शत्रुओं का हनन कर शिव स्थान मे अपने स्थिरस्वरूप को प्रतिष्ठित किया है। प्रभु का वह स्वरूप (परमात्मरूप) सहज पवित्र है, स्वयसिद्ध है तथा ज्ञानरूप है और लोक मानस को रुचिकर (अच्छा लगने वाला) है। यद्यपि प्रस्तर अथवा धातु निर्मित ये जिनेन्द्र प्रतिमायें स्वय मे चेतना रहित है तथापि चेतन (मनुष्य) के लिए चित्स्वरूप दर्शाने वाली है। कवि 'जिनेश्वर' कहते है कि श्री जिनेश्वर के कृत्रिम प्रस्तर तथा अकृत्रिम जितने चैत्यालय है, जितनी उनमे जिन प्रतिमाएँ है, उन्हे गुरुओं ने परम्परा से पूजनीय बताया है।

"एक समय भरतेश्वर स्वामी तीन बात सुनी तुरत-फुरत ।
चक्ररतन, प्रभुज्ञान, जनम सुत, पहले कीजे कौन कुरत ।।
धर्म-प्रसाद सबै शुभ सम्पति जिन पूजे सब दुरत दुरत ।
चक्र उछाह कियो सुत-मंगल 'द्यानत' पायो ज्ञान तुरत ।।"

—जैन पद संग्रह, च० भाग २६७

एक समय भरत चक्रवर्ती ने तुरत-फुरत (एक साथ) तीन वृत्तान्त सुने—उन्हे तीन ओर से तीन शुभ समाचार प्राप्त हुए। उन्हें चक्ररत्न की प्राप्ति हुई थी, कैलास गिरि पर श्रीऋषभदेव को केवल ज्ञान हुआ था और महासम्राज्ञी ने पुत्र प्रसव किया था— वार्ताहरो ने, अन्त:पुरिकाओ ने तीनो बाते उन्हे सूचित की। चक्रवर्ती ने विचार किया। किस कृत्य को प्रथम करना चाहिये ? क्योंकि सम्पूर्ण शुभसम्पत्ति की उपलब्धि धर्मकृपा से (धर्मपालन से) होती है और श्री जिनेश्वर की पूजा करने से समस्त दुरित क्षय होता है। यह सब सोच विचार कर उन्होंने चक्ररत्न और पुत्ररत्न प्राप्ति पर विधेय उत्सव और मगलानुष्ठान किया तथा तुरन्त केवलज्ञान की पूजाविधि सम्पन्न करने कैलास को प्रस्थान किया। (अथवा 'धर्मप्रसाद से ही सब शुभ सम्पदा मिली है' —यह विचार कर उन्होंने श्री जिनेन्द्र की पूजा की, तदनन्तर चक्ररत्न प्राप्ति-उत्सव तथा पुत्र उत्पन्न होने के मगल कौतुक किये —यह ज्ञान-पूर्वक भरत ने समझा।)-

"फूली वसन्त जहं आदीसुर शिवपुर गये ।
भरत भूप बहत्तर जिनगृह कनकमयी सब निरमये।।
तीन चौवीस रतनमय प्रतिमा अँग रंग जे जे भये ।।
सिद्ध समान शीस सम सबके अद्भुत शोभा परिनये।।
'द्यानत' सो कैलास नमों हों गुन का पै जात वरनये।।"

—द्यानत विलास, ५७

जहाँ भगवान् श्री आदिनाथ शिवपुर (कैवल्यधाम, निर्वाण) को प्राप्त हुए उस कैलास पर वसन्त ऋतु फूल रही है—आनन्द-उद्यान महक रहे है। भरत चक्रवर्ती ने बहत्तर जिन मन्दिरो का निर्माण करवाया है, वे सब काचन-उपकरण से निर्मित है। उन चैत्यालयों में बहत्तर रत्नमय प्रतिमाएँ विराजमान है जिनका अग-रग स्वभाविक चारुता लिए हुए है। अलौकिक शोभा- सम्पन्न उन समस्त प्रतिमाओ के शीष सिद्ध भगवान् की मुद्रा मे है। कवि 'द्यानतराय' कहते है उस पवित्र कैलास को नमस्कार है। जहाँ प्रभु को निर्वाण प्राप्त हुआ उसके गुण कौन गा सकता है ?

---


सङ्गीत
'श्रोत्रनेत्रमहोत्सवाय'
सङ्गीत श्रोत्र (कान), नेत्र (आँखों)
के लिए उत्सवकारक है।

# भक्ति और संगीत

## १

### ऋषभदेव पारणा स्तवन

"आज ऋषभ घर आवे, देखो भाई ॥
रूप मनोहर जगदानन्दन, सबही के मन भावे ।
केई मुकताफल थाल विशाला,
केई मणि माणक ल्यावै ।
हय गय रथ पायक वर कन्या,
प्रभु जी कुं वेग बधावै ॥
श्री श्रेयांस कुँवर दानेश्वर, इक्षुःरस बहिरावै
उत्तम दान अधिक अमृत फल;
'साधू कीरत' गुण गावै ॥"

—कवि साधुकीर्ति

७

## आदिजिन-स्तवन

"आज सुदिन मेरी आस फली री ॥
आदि जिणंद दिणंद सो देख्यो,
हरख्यो हृदय ज्युं कमल कली री ॥
चरण जुगल जिनके चिन्तामणि,
मूरति सोइ सुरधेनु मिलो री,
नाभि नरिंद को नन्दन नमता,
दुरितदशा सब दूर दली री ॥
प्रभु गुण-गान-पान अमृत को,
भगति सुसाकर माँहि मिली री।
श्री जिन सेवा सांइ धर्म सीमा,
ऋद्धि पाइ सांइ रंग रली री।"

—कविवर श्री धर्मवर्द्धन

3

## ऋषभदेव भक्ति गीतम्

ऋषभ की मेरे मन भगति बसी री।
मालती मेघ मृगांक मनोहर,
मधुर मोर चकोर जिसी री।
प्रथम नरेसर प्रथम भिक्षाचर,
प्रथम केवलधर प्रथम ऋषी री।
प्रथम तीर्थंकर प्रथम भुवन गुरू,
नाभिराय कुल कमल ससी री।
अंश ऊपर अलिकावलि ओपत,
कंचन कसवट रेख कसी री।
श्री विमला चल मण्डन साहिब,
समय सुन्दर प्रणमत उलसी री॥

—कविश्रेष्ठ समयसुन्दर

## ४

# ऋषभदेव गीतम्

रे जीव मोहि मिथ्यात्व महे, क्या भ्रम्यउ अज्ञानी ।
प्रथम जिनंद भजइ न क्युँ, शिव सुख को दानी ॥
अउर देव सेवइ कहा, विषयी वेहमानी ।
तरि न कसइ तारइ कहा, दुरगति नीसानी ॥
तारण तरण निहाज हइ, प्रभु मेटउ ग्यानी ।
कहे जिन हरष सुतारि हइ भव सिन्धु सुज्ञानी ॥

—सुकवि जिनहर्ष

## ५

# श्री ऋषभ जिन स्तवनम्

उठत प्रभात नाम जिनजी को गाइये ।
ऋषभ जिणंदा आणंद कंद इंदा,
याही तें चरण सेवैं कोटि सुर इंदा ॥
मरुदेवी नाभिनन्द अनुभौ चकोर चन्दा,
आप रूप कौ सरूप, कोटि ज्युं दिणंदा ॥
शिव शक्ति न चाहूँ, चाहूँ न गोविन्दा,
'ज्ञान सार' भक्ति चाहूँ, मैं हूँ तेरा बन्दा ।

—अध्यात्मकवि ज्ञानसार

६

## आदि जिनेश्वर स्तवन

हम जानत हैं तुम तारोगे।
नाभिराय मरुदेवी को नन्दन मेरी ओर निहारोगे ।।
आदि जिनेश्वर अंतरजामी,
स्वामी कुछ न विचारोगे ।।
जग वन जीवन जग तोरण हो,
राही विरुद संभारोगे ।।
श्री 'जिन सौभाग्य सुरिन्द' कूँ,
साहिब भव जल पार उतारोगे ।।

—कवि सुरेन्द्र

७

## आदि जिणंद स्तवन

साहिब आदि जिनंद चंद।
मोहे अपने रंग में रंग दे ॥
रतनत्रयी रिद्धी तेरी देखी,
सो अब मुझकूं सजा दे ॥
रंग मिथ्यात लग्यो है आदि को,
साहिब उनकुं खिणदे ।
तुम सम साहिब और न देख्यो,
आप समान तुं कर दे ॥

—अज्ञात कवि

## ८

# ऋषभदेव स्तवन*

"जय बोलो ऋषभ जिनेश्वर की।
जनम अयोध्या माता मरुदेवो,
नाभिनन्दन जगतेश्वर की ॥
धनुष पांच से काया जिनकी,
लच्छन वृषभ धरेश्वर की ॥
लाख चौरासी पूरब आयू,
कुल इच्छाकु नरेश्वर की।
दास 'चुन्नी' प्रभु सेवा चाहे,
तारण तरण तरेश्वर की ॥"

—कवि चुन्नीलाल

* ये आठ स्तवन अहिंसावाणी—वर्ष १६, अंक १, जनवरी १६६६ के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। इनकी शोध-खोज श्री अगर चन्द नाहटा ने की है।

## ९

# आरती

जय पार्श्वनाथ जिनराया। हा दीन शरण तव पाया ॥धृ०॥

ज्ञान-अनुपम-ज्योति लावुनों, आरति करण्याते या।

बुद्धि सदोदित हृदयि वसूंदे, भगवति नेउनि विलया ॥१॥

इन्द्रादिक सुरवृंद समर्थ न, जिनवर गुणगण गाया।

काय असे मग पाड नराचा, तद्गुणलेश वदाया ॥२॥

भक्त जनांचा कैवारी तूं, असासि ह्मणुनियां सदया।

उत्कंठित हा 'दासरतन' तव, चरणामृतरस प्याया ॥३॥

(मराठी भाषा)

१०

## प्राणार्पण नृत्य*

"नीलंयशा नाम एक, देवी मघंवा पाठाय,
श्राय जाको श्रंतर महूरत प्रमानिये ।
गावत सुकंठगोत, नाचत संगीत ताल,
बाजत मृदंग बीन, बांसुरी बखानिये ।
नटति नटति श्रायुपूरी खिर गई देह,
देखि जिननाथ जग, नाशवान जानिये ।
राज काज त्याग कोजे, श्रात्मीक रस पीजे,
दीजे दुख लीजे सुख मोह कर्म भानिये ।।"

—श्री वृषभदेव पुराण, मूल ब्र० मनसुखसागर,
श्रनु० श्री वीरेन्द्र

* श्रहिंसावाणी, वर्ष ७, पृ० १४२, १६५७ ।

# संगीत जिन पर आधृत हैं

## (स्वर और व्यञ्जन)

"तेत्तीस वेंजणाइं, सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारि य जोगवहा, चउसट्ठी मूलवण्णाओ ॥"–

—आचार्य नेमिचन्द्र, गोम्मटसार (तृ० वृ०), १/३५२

तेंतीस व्यञ्जन, सत्ताईस स्वर और चार योगवाह मिलकर चौंसठ मूलवर्ण है ।*

### ३३ व्यञ्जनाक्षर

जिनके उच्चारण में अर्द्धमात्रा-काल (समय) लगता है । अर्द्धमात्रा-काल के भी मन, वचन और काय के रूप में सूक्ष्म तीन समय हो जाते हैं ।

### २५. पंचवर्गाक्षर

क् ख् ग् घ् ङ् ।

च् छ् ज् झ् ञ् ।

ट् ठ् ड् ढ् ण् ।

त् थ् द् ध् न् ।

प् फ् ब् भ् म् ।

### ८. परं वर्णाष्टकम्

य् र् ल् व् ।

श् ष् स् ह् ।

*तेतीस विंजणाइं, सत्तावीसा सरा तहा भणिया ।
चत्तारि य जोगवहा, चउसट्ठी मूलवण्णा ओ ॥
—आचार्य शिवकोटी, भगवती आराधना, १८ ।

## ह्रस्व स्वर

जिनके उच्चारण में एक मात्रा-काल लगता है।

अ इ उ ऋ ऌ ए ऐ ओ औ ।

## दीर्घ स्वर

जिनके उच्चारण में दो मात्रा-काल लगता है।

आ ई ऊ ॠ ॡ ऐ ऐ ओ औ ।

## प्लुत स्वर

जिनके उच्चारण में तीन मात्रा-काल लगता है।

आ ई ऊ ॠ ॡ ऐ ऐ ओ औ ।

प्राकृत भाषा की ब्राह्मी वर्णमाला में ३३ व्यञ्जन, २७ स्वर और ४ योगवाह मिला कर ६४ मूलवर्ण होते हैं।

संस्कृतभाषा की अक्षरमाला में ६३ मूलवर्ण होते हैं। उसमें 'ऌ' का प्रयोग नहीं होता, अवशिष्ट ३३ व्यञ्जन, २६ स्वर और ४ योगवाह होते हैं।

## संगीत के प्रारम्भिक स्वर

सा रे ग म प ध नि (भारतीय)

डो रे ला सो फा मी (अंग्रेजी)

इनमें, सा, रे — वीर, रौद्र और अद्भुत रसों के पोषक है।
घ, — भयानक और बीभत्स रसों का पोषक है।
ग, नि — करुण रस के पोषक हैं।
म, प — शृङ्गार एवं हास्य रसों के पोषक हैं।

आठ रस सविकल्प ध्यान की तन्मयता के कारण हैं, परन्तु शांत या प्रशांतरस निर्विकल्प-ध्यान के साधक निर्ग्रन्थ योगी को ही होता है।

●●●

# श्रमण-जैन भजन प्रचारक संघ

के संस्थापक

व

## प्रवन्ध समिति के सदस्य

१. **श्री नरेन्द्र कुमार जैन** (सभापति)
**मैसर्स मीरी मल नेम चन्द जैन जौहरी**
दरीबा कलाँ, देहली-६।

२. **श्री देवेन्द्र कुमार जैन** (उप-सभापति)
**मैसर्स जगाधर मल घन्नू मल जैन**
दरीबा कलाँ, देहली-६।

३. **श्री श्रीपाल जैन** (मन्त्री)
**सुपुत्र सेठ शीतल प्रसाद जैन**
२५६/२६४, चाणक्य पुरी, सदर मेरठ।

४. **श्री राजेन्द्र कुमार जैन** (उप-मन्त्री)
६६, तीरगरान स्ट्रीट, मेरठ शहर।

५. **श्री रमेश चन्द जैन** (कोषाध्यक्ष)
**मैसर्स सागर चन्द जैन एण्ड सन्स**
पेपर मर्चेन्ट
चावड़ी बाजार, देहली-६।